International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, January-June 2020, Submitted in May 2020, iajesm2014@gmail.com

कबीर की सामाजिक विचारधारा

Premlata, Research Scholar (Hindi), Janaradan Rai Nagar Vidyapeeth, Udaipur (Rajasthan).
Dr. Rennu, Professor (Hindi), Janaradan Rai Nagar Vidyapeeth, Udaipur (Rajasthan).

प्रस्तावना

भक्तिकाल के कवियों ने मुख्यतः स्वान्तःसुखाय रचना की। कबीर उसी धारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताई एवं समाज-सुधार दोनों का भारतीय जन-मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी आलोचना में उनके दोनों रूपों को लेकर बहस होती रही है। यद्यपि उन्होंने समाज-सुधारक होने की कोई घोषणा नहीं की, पर उनकी रचनाओं में कवित्व और समाज-सुधार दोनों का समावेश मिलता है। तो सवाल है कि कबीर की पहचान किस रूप में की जाए? हिन्दी के आलोचकों ने कबीर का मूल्यांकन किस रूप में किया? कबीर के कवि होने, या समाज-सुधारक होने के विवाद का तर्क क्या है? कवि या समाज-सुधारक के रूप में उनकी रचनाओं को पढ़े जाने का अन्तर क्या है? उनके दोनों रूपों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? क्या इन्हें एक-दूसरे से पृथक देखा जा सकता है? इन प्रश्नों के सहारे हम कबीर की रचनाओं में मौजूद काव्यत्त्व और सामाजिक सरोकारों से अवगत हो सकेंगे। उनके साहित्यिक महत्त्व से परिचित हो सकेंगे, सामाजिक महत्त्व समझ सकेंगे। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर 'कबीर की सामाजिक विचारधारा : कवि बनाम समाज-सुधारक' विषय को इस पाठ में शामिल किया गया है।

समाज-सुधारक कबीर

चित्तवृत्तियों के विरेचन तथा समाजहित में अपने अनुभव और श्रुति परम्परा से ग्रहण किए गए ज्ञान का प्रसार ही भक्तिकाल के सन्तों का काव्य प्रयोजन होता था। कबीर की कविता में यह ज्ञान समाज-सुधार के तत्त्वों के साथ सामने आया। वे राज सत्ता और धर्म सत्ता के भय से मुक्त होकर अपने समय के समाज-सत्य को वाणी दे रहे थे। जिस समाज में धर्म और जाति के नाम पर भेदभाव किया जाता हो, वहाँ काव्य का प्रमुख प्रयोजन, विद्रूपों पर प्रहार (शिवेतरक्षतये) ही हो सकता है। कबीर के समय में उत्तर भारत में दो धार्मिक अस्मिताएँ, हिन्दू और मुसलमान थीं। दोनों में अपने-अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज, सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं के सन्दर्भ में कट्टरता विद्यमान थीं। दोनों परस्पर द्वेष और वैमनस्य रखते थे समझौते के लिए कोई तैयार न था। ऐसे परिवेश में कबीर ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों की आलोचना की। उन्होंने धर्म के आडम्बर और तर्कहीनता को उजागर किया। उन्होंने न केवल सामाजिक स्थिति में निहित विद्रूपता को उजागर किया, बल्कि उसके सुधार के लिए सचेत प्रयास भी किया। उनकी रचनाओं में धर्म और जाति सम्बन्धी मूल्यों, मानवता-विरोधी रुढ़ियों पर निरन्तर तर्क किया गया है। उसमें धार्मिक अन्धविश्वासों, अतार्किक रीति-रिवाजों, कर्म और श्रम विरोधी मूल्यों के स्तर पर समाज को दुरुस्त करने की कोशिश मिलती है। समाज सुधार के लिए हिन्दू, मुसलमान दोनों कबीर की कविता से अपना स्वर बुलंद करते हैं। आरम्भिक आलोचकों ने इसी कबीर को समाज-सुधारक, धर्म प्रवर्तक, उपदेशक, आदि रूपों में चिन्हित किया। मध्यकालीन सन्तों, टीकाकारों, भक्तों से लेकर वर्तमान आलोचकों तक ने कबीर के वैचारिक सरोकारों को प्रमुखता से रेखांकित किया।

कवि के रूप में कबीर

भक्तिकाल में जायसी के अलावा किसी भी रचनाकार ने स्वयं को कवि के रूप में याद रखे जाने की कामना नहीं। कबीर ने भी अपनी वाणियों को कविता या गीत न कहकर 'ब्रह्म विचार' कहा, जिनमें उनके आध्यात्मिक साधना (आतम साधन) का सार समझाया गया है।

तुम जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म–विचार।/ केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥

तुलसी और सूर की तरह उनकी प्राथमिकता भी भक्ति ही थी, किन्तु यह उनके कवित्व में बाधक नहीं बनी है। उन्होंने अपने जीवन जगत के अनुभवों को शब्दों में इस तरह पिरोया कि वह श्रेष्ठ कविता बन गई। किन्तु हिन्दी आलोचना में देर तक कबीर के कवि रूप की पहचान समाज सुधारक या धर्म-संस्थापक के वर्चस्वशाली रूप के आगे फीकी पड़ी रही। कबीर का सांसारिक अनुभव बेहद अटपटा और खरा था। इस अटपटे संसार को प्रकट करने के लिए उन्होंने सिद्धों-नाथों की शैली को विकसित कर कविता की नई शैली को जन्म दिया, जिसे उलटबाँसियाँ (एक अचम्भा देख्या रे भाई / ठाढ़ा स्यंघ चरावै गाई।) कहा गया। इसके अतिरिक्त उनकी कविता की भाषा कोई एक मानक बोली न होकर अनेक बोलियों के मिश्रण से बनी है। इसे बहुत से आलोचकों ने कविता विरोधी माना और कबीर के काव्य के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी उसमें काव्यत्व के अभाव की घोषणा की। इस तरह से कबीर के काव्य की आलोचना करने वालों की दो श्रेणियाँ बनीं। एक श्रेणी में वे आलोचक शामिल हैं जिन्होंने कबीर के समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक

आदि रूपों को प्रधान माना है तथा कबीर के कवि रूप को भी रेखांकित किया है। दूसरी श्रेणी में वे आलोचक हैं, जिन्होंने कबीर को प्राथमिक रूप से कवि के रूप में पहचाने जाने पर बल दिया है।

कवि कबीर : परोक्ष स्वीकृति

मध्यकालीन संग्रहकारों, परिचयकारों और टीकाकारों के समान ही आरम्भिक हिन्दी आलोचना में कबीर का कवि रूप उल्लेखनीय है। कबीर के कविता की प्रभा अपनी चमक से निरन्तर आलोचकों को चौंधियाती रही। आलोचकों ने उनके कवि रूप को प्रधान न मानकर वक्तृत्व शैली, काव्य प्रतिभा, प्रतीक योजना आदि की सराहना की। वस्तुतः वे इस तरह कबीर के कवि रूप की ही विशेषताएं रेखांकित कर रहे थे। *कबीर ग्रन्थावली* के सम्पादक श्यामसुंदर दास ने कबीर की भक्ति और भावुकता को कवित्व से ऊपर रखा, और इसका कारण उनकी अटपटी वाणी बताई। (भूमिका, *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक -डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1928, पृ. 4) लेकिन उन्होंने कबीर में काव्य हेतु के प्राथमिक घटक 'प्रतिभा' की पहचान भी की और उलटबाँसियों में इसकी चरम परिणति देखी। कबीर के कवि-रूप का बखान करते हुए उन्होंने लिखा –

"प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिए उनकी उलटबाँसियाँ केशव की शब्द माया को मात करती है; परन्तु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता। रात दिन आँखों में आनेवाले प्रकृति के सामान्य व्यापारों के उलट व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनको हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर आ बैठी है। (भूमिका, *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1928, पृ. 46)

वस्तुतः यह कबीर की कविता की सहजता को रेखांकित करने वाला कथन है। इसी सहजता ने कबीर को आम लोगों का कवि बनाया है। रामचन्द्र शुक्ल ने निम्न वर्ग के लोगों के उत्थान में निभाई गई कबीर की भूमिका को रेखांकित किया तो कबीर का कवि रूप भी साथ चला आया। आचार्य शुक्ल ने लिखा कि "यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं। इनकी उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था, जैसे –

है कोई गुरुज्ञानी जगत महँ उलटि बेद बूझै।
पानी महँ पावक बरै, अन्धाहि आँखिन्ह सूझै
गाय तो नाहर को धारि खायो, हरिना खायो चीता।

अथवा

नैया बिच नदिया डूबति जाय।

अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ही इन्होंने ज्ञान की बातें कही हैं जो नई न होने पर भी वाग्वैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया करती थीं।"

कबीर अपढ़ लोगों के कवि हैं, इस बड़ी विशेषता की अपनी शिष्ट दृष्टि की सीमाओं के कारण, आचार्य शुक्ल प्रशंसा नहीं कर सके। कबीर सामान्य जन की संवेदना से भली-भाँति परिचित थे। जनसामान्य से सम-व्यथा का भाव ही कबीर के काव्य का निकष है। उनमें संवेदना गहरे स्तर तक पगी हुई है। उनकी संवेदना से आत्मीयता के साथ वे ही लोग जुड़े जिनमें पीड़ा का भाव था। परशुराम चतुर्वेदी ने इसी कारण कबीर के काव्य को जनकाव्य माना "सन्त काव्य की लोकप्रियता उनके काव्य-तत्त्व की प्रचुरता पर निर्भर नहीं। वह जन साधारण के अंग बने कवियों (व क्रान्तदर्शी व्यक्तियों) की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जन साधारण की भाषा है। उसमें साधारण जन सुलभ प्रतीकों के प्रयोग हैं और वह जन जीवन को स्पर्श करता है। वही सभी प्रकार से जनकाव्य कहलाने योग्य है।" (बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, वि.सं. 2000, पृ. 19) चतुर्वेदी ने भी कबीर में काव्य-तत्त्व की प्रचुरता का अभाव माना और उन्हें जनकवि कहकर इन सीमाओं से ऊपर बताया।

कबीर के द्वारा कहे गए 'निज ब्रह्म विचार' को शब्द-प्रमाण मानकर अध्ययन किया जाए तो उनके कवि रूप पर रीझकर भी आंशिक परिचय स्वाभाविक है। 'निज ब्रह्म विचार' को ही कबीर का काव्य-सत्य मानने का परिणाम हुआ कि हजारीप्रसाद द्विवेदी उनकी कविताई पर मुग्ध तो हुए किन्तु उसे 'घलुए की वस्तु' कह दिया। काव्य-सत्य पर व्यक्ति-सत्य को वरीयता देते हुए द्विवेदी ने कहा कि "मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़ फटकारकर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य

का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है। उनकी वाणियों में सब कुछ को छोड़कर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। उसी ने कबीर की वाणियों में अनन्य साधारण जीवन रस भर दिया है। कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय आलोचक सँभाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में सन्तोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को 'कवि' न कहा जाए तो और क्या कहा जाए? परन्तु यह भूल नहीं जाना चाहिए कि यह कवि-रूप घलुए में मिली हुई वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कहीं थीं। उनकी छन्द-योजना, उक्ति वैचित्र्य और अलंकार विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक और अयत्नसाधित हैं। काव्यगत रूढ़ियों के न तो वे जानकार थे और न कायल।" (द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *कबीर*, राजकमल पेपरबैक्स, 2005, पृ. 170-71)

कबीर की कविता अद्वितीय, सहज और प्रभावशाली है। कायल न होने के कारण यदि उन्होंने परम्परागत काव्यरूढ़ियों से कविता को दूर रखा है तो फिर उन्हें कवि न मानने का तर्क बहुत ठीक नहीं लगता है। कबीर का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनकी कविता में घुल मिलकर एकाकार हो चुका है। जहाँ एक तरफ जात-पाँत का निषेध है, दूसरी तरफ धार्मिक आडम्बर का भी नकार है। धर्मसत्ता ने जो विचारहीन आस्था निर्मित की, कबीर ने उसको अस्वीकार कर दिया। अस्वीकार का यह साहस कबीर के व्यक्तित्व के साथ उनकी कविता की भी थाती है। तभी तो उनकी कविता का स्वर इतना तीखा बन पड़ा कि आलोचकों को वह कविता के बाहर की चीज लगती है। कबीर के सम्बन्ध में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल की मान्यता बिल्कुल स्पष्ट है कि "उनके पद्यों में केवल कुछ ही ऐसे हैं जो अच्छी कविता के अन्तर्गत आ सकते हैं और जिनमें प्रदर्शित चित्र भी सुन्दर हैं। शेष या तो उपदेशात्मक उद्गार हैं अथवा योग एवं वेदान्त के विविध सिद्धान्तों के रूपकों द्वारा व्यक्त किए गए अंश हैं। इस प्रकार के काव्यों को हम काव्य की दृष्टि से रूपात्मक नहीं कह सकते।"(बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2000, पृ. 36)

कबीर ने काव्य को अपना माध्यम काव्य के लिए नहीं; सामाजिक अनुभव, सत्य एवं ज्ञान के निरूपण के लिए बनाया। यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ कहा उसमें अनुभूति की गहनता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता भी है। उनके काव्य में कला-पक्ष भले शिथिल हो किन्तु भाव-पक्ष कहीं अधिक उन्नत है। बीसवीं सदी में कबीर का कवि रूप ज्यादातर परोक्ष रूप से स्वीकृति पाता रहा। अन्तिम दौर में जरूर उन्हें प्राथमिक रूप से कवि के रूप में देखे जाने के तर्क का विकास शुरू हुआ।

कबीर का कवि व्यक्तित्व

कबीर को कवि रूप में प्राथमिकता देने तथा उनकी कविताई पर व्यवस्थित अध्ययन करने वाले आलोचक लिण्डा हेस महत्त्वपूर्ण हैं। लिण्डा हेस ने कबीर को कवि और मूलगामी सुधारक माना। हेस के अनुसार समाज केवल बाह्यतम परत थी, जिसको कबीर ने सुधारने की कामना की। वे सवाल करती हैं कि आखिर क्यों उनकी अटपटी कविता इतनी वेधक और स्मरणीय बन पड़ी? यह सवाल कबीर की शैली के अध्ययन को इंगित करता है। मान्य तथ्य है कि पाठ आधारित आलोचना ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है। कबीर के बारे में कोई भी राय कबीर की रचनाओं के जरिए कायम की जानी चाहिए। कबीर के यहाँ प्रेम की अनन्यता के बेहद मधुर पद हैं जो उन्हें श्रेष्ठ कवि की पंक्ति में शुमार करते हैं। यह हिन्दी आलोचना का परिष्कार है कि कबीर के सुधारक, व्यंग्यकार रूपों को पार कर समालोचक उनकी कविताई को प्राथमिक मानने को उद्यमशील हुए हैं।

कबीर के विचारों, संघर्षों और मान्यताओं को यदि थोड़ी देर के लिए अलग कर दें तो भी हम उनके कवि रूप को पहचान सकते हैं। कबीर कहते हैं और मानते हैं कि यह संसार माया है। आपसी रिश्ते झूठे हैं। माता-पिता भाई-बहन कुछ भी सही नहीं है। सब अकेले आते हैं और अकेले जाते हैं। तब प्रश्न उठता है और 'दादूदयाल' पर विचार करते हुए डॉ. रामबक्ष ने उठाया कि 'तब निर्गुण भक्त कवियों ने दूसरे मनुष्यों को इतना उपदेश क्यों दिया? वे क्यों चाहते थे कि सांसारिक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके 'सत्य' का साक्षात्कार करे? चूँकि वह संसार के अन्य मनुष्यों से प्यार करते थे, अतः उन्होंने उनको सुधारने-सँवारने के लिए ज्ञान का प्रचार किया।

यदि हम इस दृष्टि से देखें तो कबीर की डाँट-फटकार में उनका प्रेम, उनका दर्द दिखाई देता है। कबीर झुंझलाकर कहते है कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? ऐसा क्यों नहीं करते? जो सही है, वह तुम्हें दिखाई नहीं देता। उन्हें देखो आगे गड्ढा है, गिर पड़ोगे। कबीर जानते थे। कबीर के पाठक नहीं जानते। उन पाठकों के हित में उन्हें फटकार रहे हैं। यह फटकार उनके प्रेम से आई हैं।

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाका संग तै बीछुड्या, ताही के संग लागि ।।

कबीर की भाषा अत्यन्त अर्थ गर्भित है। अब यह सोना सिर्फ जैविक क्रिया नहीं है। यह अज्ञान का सोना है। निष्क्रियता का सोना है। इस एक शब्द के अर्थ-विस्तार से पूरी साखी के अर्थ का विस्तार हो जाता है। कविता यही तो करती है। शब्द के अर्थ का विस्तार करती है। कवि और पाठक के बीच नया रिश्ता बनाती है। और इस कार्य में कबीर बहुत प्रभावशाली है।

कबीर जब किसी नादान-नासमझ व्यक्ति को सम्बोधित करते हैं, तब उनका स्वर, उनकी भाव-भंगिमा और उनकी भाषा करुणा में भीगी हुई होती है। भले ही ऊपर से वे डाँट-फटकार करते हुए दिखाई देते है। जब कबीर ऐसे लोगों को सम्बोधित करते हैं जो दूसरों को गुमराह कर रहे हैं, तब उनकी भाषा उग्र और हृदय में क्रोध होता है। तिरस्कार होता है। अवमानना होती है। जब वे कहते हैं 'जिनि कलमाँ कलि माँहि पठावा' या कहते हैं, 'पण्डित भूले पढ़ि गुन्य बेदा', तब उनमें क्रोध की भावना आती है। यहाँ कबीर पंजा लड़ाने के लिए तर्क करते हैं और तर्क से परास्त कर देंगे, यह विश्वास उनकी कविता में है।

यह अलग बात है कि ऐसे पद उनकी कविताओं में बहुत कम है। कबीर की अधिकांश साखिया और पद सन्तों को सम्बोधित है जिनमें वे अपना अनुभव साझा करते हैं, जीवन को निरीक्षण और निरीक्षण के निष्कर्ष बताते हैं। यह हमें कबीर की विचारशीलता का एहसास कराता है। इस विचारशीलता से कबीर कितने गहरे जुड़े हुए हैं इसका एहसास होता है। इन्हीं में कबीर का व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है, जिसका विश्लेषण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है। यदि कबीर सिर्फ उपदेश देते रहते, तथ्य कथन करते रहते तो उनका व्यक्तित्व अभिव्यक्त नहीं होता। कवि का व्यक्तित्व उनके सर्जन में अभिव्यक्त होता है। अपने अनुभव का वे साक्ष्य देते हैं। यही उनकी कविता की जान है।

कविता यदि भाव व्यापार है तो कबीर की कविताओं में उनके भावों की अभिव्यक्ति हुई है। हालांकि उनके सारे भाव विचारों में गूंथे हुए आते है। ऊपर-ऊपर से देखने पर हमें कबीर के विचार दिखाई देते है, परन्तु उन विचारों की पृष्ठभूमि में उनकी उत्कट भाव सम्वेदना सक्रिय रहती है।

निष्कर्ष

कबीर हिन्दी के उन गिने-चुने कवियों में हैं जिनकी रचना अपने सामाजिक सरोकारों की वजह से लोकप्रिय और चर्चित है। कबीर की सामाजिक विचारधारा वंचितों के लिए बेहद आकर्षक और सम्भ्रान्तों के लिए उतनी ही विकर्षक है। परिणामस्वरुप दोनों दृष्टियों से कबीर की सामाजिक विचारधारा को रेखांकित करने योग्य मानी गई। उनका कवि रूप भी साथ साथ सामने आया, किन्तु बेहद क्षीण रूप में। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक हिन्दी आलोचना कबीर को समाज-सुधारक या क्रान्तिकारी परिवर्तन की कामना करने वाले विचारक के रूप में देखती रही। इधर पाठ आधारित आलोचना पर बल दिया गया और कबीर को प्राथमिक रूप से कवि के रूप में पहचाने जाने का उद्यम दिखने लगा है।

संदर्भ :

1. कबीर ग्रंथावली: सं. श्यामसुन्दर दास, इंडियन प्रेस, प्रयाग
2. कबीर ग्रंथावली सटीक: सं. डॉ. रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
3. कबीर ग्रंथावली सटीक: सं. डॉ. रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
4. कबीर ग्रंथावली: सं. माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, इलाहाबाद
5. कबीर: आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, मुंबई
6. कबीर अनुशीलन: सं. डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, कोलकाता
7. भक्ति के तीन स्वर – मीरा, सूर, कबीर: जॉन स्ट्रैटन हौली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
8. संत कबीर: रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद
9. कबीर मीमांसा: रामचंद्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
10. प्राचीन कवि: विश्वम्भर मानव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

11. हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि: द्वारिका प्रसाद सक्सेना, अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा
12. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य: शिवकुमार मिश्र, लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद